काल-तत्व-निरुपण

- डॉ. धीरेन्द्र झा, दरभंगा

वेद भारतीय वाङ्मय और संस्कृति की अनुपम मणि-मंजूषा है । वेद विश्व विराट अनादि और अनन्त है। इसका स्रोत अविनाशी है । व्यक्ति के मन में जितना आजतक आ चुका है और जो कुछ भविष्य में प्रतिभासित होगा, उस सबका स्रोत उसी विश्वात्मक ज्ञान में है, जिसे वेद कहा जाता है । उसे ही अव्यक्त सरोवर, ब्राह्म सर, वाक्समुद्र या अपौरुषेय ज्ञान कहते हैं ।

वैज्ञानिकों के अनुसार जीवन के तीन विशेष सिध्दान्त हैं :— उनमें पहला है अन्न अन्नाद का नियम जिसे वैज्ञानकि एसिमिलेशन और एलिमिनेशन कहते हैं । पोषण प्राप्त करने के बाद दूसरी प्रक्रिया संवर्धन की है जिसे वैज्ञानिक भाष में सेल-फिशन, सेल-डिवीजन या ग्रोथ कहते हैं । इन दोनों के बाद जीवन का तीसरा लक्षण प्रजनन है । जिस बीज से प्राण की उत्पत्ति होती है, प्रजनन के द्वारा पुन: उसी बीज की सृष्टि प्रकृति का लक्ष्य है । बीज से बीज तक पहुँचना यही प्रकृति का चक्र है, जिसे ब्रह्मचक्र एवं संवत्सर चक्र भी कहते हैं । प्रत्येक बीज काल की जितनी अवधि में पुन: बीज तक पहुंच पाता है, वही उसका संवत्सर-काल है ।

किन्तु, यह संवत्सर की चक्रात्मक गति है, जो बार-बार घूमती हुई समय के साथ नये-नये बीजों का निर्माण करती है । प्रजापति की सृष्टि में समस्त प्राण तत्व या जीवन संवत्सर चक्र से नियंत्रित है । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि-''संवत्सर एव प्रजापति:''। इस संवत्सर को दो रुप हैं:- एक चक्रात्मक, दुसरा यज्ञात्मक । पृथ्वी जितनी देर में एक बिंदु से चलकर पुन: उसी बिंदु पर लौट आती है, वह चक्रात्मक संवत्सर है । उस कालात्मक संवत्सर की अवधि में देव अग्नि या शक्ति जो भी भूत पदार्थ बहार से खींचकर अपने स्वरुप में ढ़ाल लेती है, वही यज्ञात्मक संवत्सर है । इस प्रकार प्रजापति ने विश्व की रचना के लिए अपने आपको संवत्सर और यज्ञ इन दो रुपों में प्रकट किया है : — ''संवत्सरो यज्ञ: प्रजापति: ।'' संवत्सर और यज्ञ, काल और जीवन से दो सृष्टि के महान रहस्य हैं ।

संवत्सर शब्द केवल कालवाचक नहीं है अपितु सूर्य मण्डल से जो अग्नि पृथ्वी पर निरन्तर आता रहता है उसी को वैश्वानर और संवत्सराग्नि कहा जाता है । एक वर्ष में जितनी मात्रा में सौर अग्नि आई, वह एक संवत्सराग्नि हुई । हमारे शरीर में जो वैश्वानर अग्नि है वह भी सौर-अग्नि का ही अंश है, यह वैदिक विज्ञान की मान्यता है । यज्ञ के द्वारा यजमान के शरीरस्थ वैश्वानराग्नि का संस्कार कर, सूर्यमंडल की पृथ्वी-व्याप्त संवत्सराग्नि को मिला दिया जाता है जिससे वह सूर्यमंडल वा स्वर्ग लोक में जा सके । संवत्सर का सबसे छोटा समय विभाग अहोरात्र कहलाता है । एक संवत्सर में ३६० अहोरात्र अर्थात् एक दिन एक रात्रि ये दो अंश प्रति अहोरात्र होते है । इस प्रकार ३६० शुक्लचक्र दिन और ३६० कृष्णचक्र अर्थात् कुल मिलाकर ७२० का पूरा संवत्सर हो गया । इस अहोरात्र का निर्माण पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण ही होता है । पृथ्वी के गतिक्रम की २४ घण्टें में गणना करके जो निकलता है वह

एक अंश कहलाता है । प्रत्येक अंश के शुक्ल–कृष्ण भेद से दो भाग होने पर तीन सौ आठ अंशोवाले संवत्सर के ७२० भाग हो जाते है । इन्हीं अंशों को अहोरात्र– विभाग कहते ।

इसी प्रकार संवत्सर का दूसरा विभाग जो चन्द्रमा की गति के कारण १५ दिन शुक्लपक्ष तथा १५ दिन कृष्णपक्ष का एक के बाद एक क्रम से चलता है, महीना कहलाता है । प्रत्येक माह में शुक्ल और कृष्ण दो दो भाग होने से संवत्सर के २४ विभाग बन जाता है ।

ऋतु क्रम से संवत्सर का तीसरा विभाग होता है । तीन ऋतुएँ प्रधानतया होती हैं — ग्रीष्म, वर्षा और शीत । प्रत्येक ऋतु चार–चार महीनों की होती है । इस प्रकार ऋतुक्रम से संवत्सर के तीन भाग हो जाते हैं ।

अयन क्रम से संवत्सर का चतुर्थ भाग हो जाता है । प्रत्येक संवत्सर में सूर्य छह महिनों तक विषुवत् वृत्त के उत्तर की ओर रहता है । दूसरे छह महीनें सूर्य विषुवत् वृत्त से दक्षिण की ओर रहता है । सूर्य की इसी गति के कारण पूरे संवत्सर के दक्षिणायन और उत्तरायण भेद से दो विभाग हो जाते हैं । सूर्य की उत्तरायण गति को शुक्ल कथा दक्षिणायन गति को कृष्ण कहा जाता है ।

संवत्सर का जो पाँचवाँ विभाग है वह पूर्ण है अर्थात् एक है ।

संवत्सर के इन पाँच प्रकार के विभागों में पाँच प्रकार की अग्नि है । भिन्न–भिन्न अग्नियों में आहुति देकर सोम यज्ञ सम्पन्न किये जाते हैं । यह सोमयाग चार प्रकार का होता है – एकाह, अहीन, रात्रि सत्र और अयन सत्र । एकाह वह है जो एक अहोरात्र में पूर्ण हो जाता है । दस अहोरात्रों में पूर्ण होनेवाले यज्ञ को अहीन कहा जाता है । सौ अहोरात्रों में पूर्ण होनेवाले यज्ञ को रात्रि सत्र की संज्ञा दी जाती है तथा एक सहस्त्र अहोरात्र में पूर्णता प्राप्त करनेवाला सत्र अयन सत्र कहा जाता है । इन यज्ञों से संवत्सर का संस्कार होता है । संवत्सर को संस्कार करने के लिए अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य और पशुबन्धादि यज्ञों का आयोजन किया जाता था । इनमें अग्निहोत्र नामक यज्ञ से संवत्सर के अहोरात्र विभाग का संस्कार होता है । दर्शपूर्णमास से पक्ष या मासों का संस्कार संपन्न होता है, चातुर्मास्य से ऋतुविभाग का तथा पशुबन्ध से अयन का संस्कार होता है । तदुपरान्त सोमऱ्यागानुष्ठान से पूर्ण संवत्सर का संस्कार होता है । यज्ञों से स्वर्ग कामना सिध्दि से तात्पर्य है कि उपर्युक्त यज्ञों के अनुष्ठान से सौर–संवत्सर के अनुसार यजमान के शरीरस्थ वैश्वानर अग्नि का संस्कार हो जाता है और शरीर त्यागने के उपरान्त वह वैश्वानर सूर्य मण्डल में मिल जाता है । इसी सम्मिलन से स्वर्गसुख संभव है । इस प्रकार संवत्सर विज्ञान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण शास्त्र है । इत्यलम् अतिविस्तरेण ।

डॉ. धीरेंन्द्र झा प्रधानाचार्य
सरस्वती विद्या मंदिर
एस. पी. कोठी के पास
कालेज रोड, गया (बिहार)